

सांख्यदर्शन में प्रकृति का स्वरूप

मनीष प्रसाद गौतम¹, डॉ. बृजेश नाथ ओझा²

शोधार्थी (संस्कृत), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)¹
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष-संस्कृत, श्रीयुत महाविद्यालय गंगेव, जिला-रीवा (म.प्र.)²

शोध-सारांश: प्रकृति के सन्दर्भ में प्रयुक्त 'अव्यक्त' शब्द विशेष विचारणीय है। डॉ. दासगुप्त ने 'अव्यक्त' पद को त्रिधा विभक्त किया है¹ इन्होंने नपुंसकलिंग में प्रयुक्त 'अव्यक्त' को प्रकृति के अर्थ में माना है। इसी संदर्भ में डॉ. रामसुरेश पाण्डेय के अनुसार-प्रकृति एवं पुरुष इस प्रकार के लिंग के विभाजन का अतिक्रमण करते हैं। यह विभाग संसार की विकसित स्थिति में ही सम्भव है। जगदादि के रूप में अभ्युपगत प्रकृति एवं पुरुष प्रायः नपुंसक लिंग में प्रयुक्त हुआ है। पुराण तथा महाभारत एवं अन्य प्राचीन ग्रंथों में भी प्रकृति एवं पुरुष को 'स्त्री पुण्यां व्यतिरिक्त' कहा गया है। प्रकृति एवं पुरुष निर्विवादतः अव्यक्त हैं। पुरुष केवल प्रत्यक्षगम्य रूप से न होने के कारण 'अव्यक्त' हैं। प्रकृति कारण और प्रत्यक्षातिप होने के कारण 'अव्यक्त' है। कार्यों की व्यक्त और अव्यक्त द्विविध अवस्था मानी गयी है। इनकी परमाव्यक्त अवस्था ही प्रकृति है। उपयुक्त बिन्दुओं को शोध पत्र में शामिल करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द: सांख्यदर्शन, प्रकृति, स्वरूप, अव्यक्त, महाभारत, पुराण, एकाणर्व, गुणसाम्य, तमः, अक्षर, अजा, अव्यक्त, त्रिगुण, सत्व, प्रसवधर्मिणी, अचेतन, अलिंग इत्यादि।

प्रस्तावना:

प्रधान के प्रलय, एकाणर्व, गुणसाम्य, तमः अक्षर, क्षेत्र, ज्ञान, बहुधानक, जगत्कर्त्री, प्रयोजनवती, अजा, अव्यक्त तथा त्रिगुण, सत्व, प्रसवधर्मिणी, अचेतन, अलिंग, बहुप्रजा तथा गुणसर्गकर्त्री आदि अनेक संज्ञाये हैं। विज्ञानभिक्षु ने प्रकृति, शक्ति तथा माया अविद्या आदि भी पर्याय दिए हैं तत्सम्बन्धी यह स्मृति भी उद्धृत की गई है-

ब्राह्मीति विद्या विद्येति मायेति च तथा परे।

प्रकृतिश्च परा चेति वदन्ति परमर्षयः ॥

भावा गणेश ने ब्रह्म, अक्षर, क्षेत्र, विद्या एवं ब्रह्मी को भी प्रकृति का पर्याय बताया है। वाचस्पति मिश्र के मत से प्रकृति को अहेतुमत, नित्य, व्यापि, निष्क्रिय (यद्यपि अव्यक्त में परिणामस्वरूप क्रिया विद्यमान है तथापि उसमे प्रवेश निःसरण आदि का अभाव है) एक, अनाश्रित, अलिंग, निरवयव स्वतंत्र और अव्यक्त कहा है, यह त्रिगुणात्मक, अविवेकी व प्रसवधर्मि भी है।



प्रकृति को 'प्रलय' एवं अलिंग' कहा गया है; क्योंकि वह न किसी से उत्पन्न होती है और न किसी में लीन होती है। सर्वभूतलयस्थान होने के इसे 'प्रलय' रूप में माना गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में 'तत्त्ववित्तु महाबाहो' में तत्त्व पद प्रकृति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि, प्रकृतिं यान्ति भूतानि^१ में भी प्रकृति सांख्य में अभ्युपगत प्रकृति का ही वाचक है। प्रकृति को 'दुरत्यापमाया' कहा गया है, यह कथन उसके बन्धक स्वरूप के कारण है। 'प्रकृतिं यान्ति, प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य, प्रकृतेर्वशात्, मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्, मम् योनिर्महद्ब्रह्म' में योनि एवं ब्रह्म प्रकृति के ही अर्थ माने गये हैं। 'प्रकृतिजैः, स्वभावजैः' में प्रयुक्त प्रकृति एवं स्वभाव सांख्य की प्रकृति के ही वाचक हैं। इस प्रकार गीता में अव्यक्त, माया, ब्रह्म, योनि तथा स्वभाव, प्रकृति के पर्याय के रूप में प्राप्त होते हैं।

लोकाचार्य ने कहा है^४—विकार उत्पन्न हुये हैं इसके कारण यह प्रकृति है। 'अविद्या' कहलाती है; क्योंकि यह ज्ञान की विरोधी है। यह माया कहलाती है; क्योंकि ये विचित्र सृष्टि उत्पन्न करती है यह अत्यन्त सूक्ष्म एवं अदृश्य है और उनकी उत्पत्तियों को देखकर ही इसका अनुमान लगाया जा सकता है। अतः प्रकृति 'अनुमान' भी कहलाती है। अचेतन तत्त्व के रूप में वह 'जड़' कहलाती है और सदैव चलने वाली अनन्त शक्ति के रूप में वह 'शक्ति' कहलाती है। समस्त वस्तुओं की अव्यक्त अवस्था के रूप में वह 'अव्यक्त' कहलाती है।

प्रकर्षेण धीयते स्थाप्यते अत्र अखिलम् इति प्रधानम् इस व्युत्पत्ति के अनुसार अन्त में सभी भौतिक तत्त्व जिसमें निहित होते हैं वह प्रधान है। प्र कृ+वित् = प्रकृति शब्द की निष्पत्ति है, जिसकी व्युत्पत्तियाँ की गयी हैं यथा—'प्रकर्षेण क्रियते यासा प्रकृतिः' अर्थात् जो महदादि 23 तत्त्वों को उत्पन्न करने वाली वह प्रकृति है।

प्रक्रियते कार्य विधौ उपादीयते या सा प्रकृतिः, प्रकरणात् पसवधर्मत्वात् प्रकृतिः (माटरवृत्ति)। इस व्युत्पत्ति से प्रकृति उसे कहा गया है जिसमें कोई अन्य तत्त्व उत्पन्न होता है। इसी प्रकृति को प्र-प्रकृष्ट, कृति-सृष्टि, अर्थात् सृष्टि में जो प्रधान रूप से स्वतन्त्र हो वही प्रकृति है, ऐसा कहा गया है। (कार्य में जो उपहित हो उसी का नाम प्रकृति है और वह प्रकृति है प्रसवधर्मि) देवीभागवत में प्रकृति शब्द की व्याख्या इसी तरह मिलती है।^५

सांख्यमत में मूलप्रकृति को ही इस जगत् का उपादान कारण माना जाता रहा है। उनका मत है कि महद् आदि समस्त व्यक्त पदार्थों की उत्पत्ति अव्यक्त प्रकृति से मानी गई है; क्योंकि भाव पदार्थ की उत्पत्ति भाव पदार्थ से ही सम्भव है।^६ विज्ञान भिक्षु कर्म तथा अविद्या के जगत् का उपादान कारण का खण्डन करते हुए कहते हैं कि— ये सृष्टि के उपादान कारण नहीं हो सकते, बल्कि ये सृष्टि के निमित्त कारण ही हो सकते हैं।^७

कर्म धर्माधर्म रूप में होते हैं अतः वे द्रव्यात्मक वस्तु के उपादान कारण नहीं बन सकते। इसी प्रकार अविद्या भी धर्माधर्मरूप होने से द्रव्य को उत्पन्न करने में असमर्थ हैं।^८

पुरुष चिद्रूप है, अतः वह भी जो चित्तों में तत्त्वों की उत्पत्ति में समर्थ नहीं हो सकता। अतः प्रकृति ही जगत् का मूलकारण हो सकती है। प्रकृति की प्रसूतियों से ही उनके कारण के रूप में प्रकृति की सिद्धि होती है।^९ क्योंकि कार्य हमेशा कारण के साथ होता है।^{१०} सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य हमेशा कारणात्मक होता है और कारण की ही व्यक्त करने वाली अवस्था ही कार्य है।



प्रधान सत्त्व, रजस् एवं तमों गुण की साम्यावस्था है। ये तीनों गुण अव्यक्त रूप मूलप्रकृति तथा उससे उत्पन्न हुए महदादि तत्व दोनों में पाये जाते हैं। 'त्रिगुण' में 'गुण' पद से यदि सत्त्व, रजस् एवं तमस् का ग्रहण करते हैं तो त्रिगुण का अर्थ सत्त्व रज तम तीनों गुणों का आधारभूत होगा जो व्यक्त के पक्ष में तो ठीक बैठ जाता है, क्योंकि महदादि सभी तत्वों में तीनों गुण पाये जाते हैं।¹¹ किन्तु अव्यक्त अर्थात् मूलप्रकृति के त्रिगुणात्मिका होने से उसका गुणों का आधार होना सम्भव नहीं लगता है। सांख्यसूत्र में कहा गया है कि¹²— सत्त्वादिगुण मूलप्रकृति के धर्म नहीं होते अपितु त्रिगुणरूपा ही मूलप्रकृति होती है।

इसीलिए यहाँ तीनों गुणों से सुख—दुःख—मोह को ही लेना चाहिए। सुखादि धर्म का आधार मूलप्रकृति के होने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं; क्योंकि सुख—दुःख—मोह क्रमशः सत्त्व, रज एवं तम के आधारभूत धर्म हैं जो उनमें ही समाहित रहते हैं। सांख्यशास्त्र में भी सुख को सत्त्व का, दुःख को रजस् का तथा मोह को तमस् का धर्म कहा गया है।¹³ इस प्रकार सुखादि वस्तुतः गुण नहीं अपितु गुणों के धर्म हैं।

अतः व्यक्त—अव्यक्त दोनों ही प्रकृति ही सुख, दुःख एवं मोह का आधार है, न कि पुरुष का। पुरुष में सुखादि की अनुभूति भ्रान्तज्ञान है। इसमें नैय्यायिक इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख—दुःख एवं ज्ञान कर्म जो आत्मा को धर्म मानते हैं¹⁵ उसका भी निराकरण हो ही जाता है। वस्तुतः सत्त्वादि धर्म हैं द्रव्य हैं, वैशेषिक दर्शन की तरह गुण नहीं; क्योंकि ये सत्त्वादि संयोग—विभाग धर्म वाले हैं। यदि ये वैशेषिकोक्त होते तो संयोग—विभाग गुण इनमें ही उपस्थित नहीं रहता। क्योंकि यह नियम है—**गुणगुणानर्गीकरात्।**

सांख्य में जिसे प्रकृति कहते हैं, न्यायशास्त्र में उसी को 'समवायिकारण' कहा गया है। यथा—घट का समवायिकारण—मृत्पिण्ड मुकुट का समवायिकारण सुवर्ण तथा तन्तुका समवायिकारण हैपट का।

वेदान्त में जगत् का उपादान हेतु 'माया' है। प्रकृति, अविद्या, अव्यक्त आदि जिसके अन्य नाम हैं। किन्तु शांकरवेदान्त द्वारा प्रतिपादित अविद्या ज्ञान के द्वारा खत्म हो जाती है, किन्तु सांख्य प्रतिपादित माया या प्रकृति नित्य हैं, अतः माया और अविद्या अलग—अलग हैं। प्रकृति की यह नित्यता परिणामिनित्यता है; क्योंकि प्रकृति एकरूप रह ही नहीं सकती, परिवर्तित होती रहती है। **प्रकृष्टकृति परिणामरूपा अस्या इति प्रकृतिः—प्रकृति** शब्द की इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी वह जगत् का आदि कारण है, यह मालूम होता है।

यह प्रधानतत्त्व कार्यसंघातात्मक पूरे विश्व का मूल अर्थात् उपादान कारण है। इस प्रकृति का मूलान्तर अर्थात् कोई दूसरा कारण नहीं है— इसीलिए इसे मूलप्रकृति— 'मूलचासौ प्रकृतिश्चेति मूलप्रकृति' कहा गया है। यह किसी और तत्त्व से पैदा नहीं होती, अतः अविकृति है।¹⁵ प्रकृति के विकारभूति महदादि तत्वों प्रकृति तथा विकृतियों की कारण रूप है, यह मूल भी है और प्रकृति भी है। इसीलिए मूलप्रकृति कहलाती है। प्रधान से महद् (बुद्धि) उत्पन्न होती है, वह प्रधान की विकृति हुई और स्वयं अहंकार को उत्पन्न करती है, इसलिए प्रकृति हुई। अहंकार महत् से उत्पन्न हुआ इसलिए विकृति हुआ और स्वयं पंचतन्मात्राओं को उत्पन्न करता है। इसलिए प्रकृति हुआ। तन्मात्राएँ अहंकार के द्वारा उत्पन्न होती है, इसलिए विकृति हुयी और स्वयं पंचमहाभूतों को उत्पन्न करती हैं, इसलिए प्रकृति हुई।



प्रकृति त्रिगुणामिका है। सत्त्व, रज एवं तम ही तीनों गुण हैं, जो उसके स्वरूपधारक हैं। तीनों गुणों के अतिरिक्त प्रकृति कोई अन्य तत्त्व नहीं है। इन गुणों की स्थिति दो प्रकार से होती है— साम्य एवं वैषम्य।

जब ये त्रिगुण एक ही स्थिति में रहते हैं तब तो मूलप्रकृति नाम से सम्बोधित किए जाते हैं—

सत्त्वरजस्तमसाम्यावस्थाप्रकृतिः।—(सां.सू. 1-61)

यही प्रलय की अवस्था कहलाती है। वैषम्यावस्था में ये ही तीनों गुण परस्पर विभिन्न अनुपातों में मिश्रित होकर सृष्टि के रूप में परिणित हो जाते हैं इस प्रकार यह प्रधान ही जगत् का 'उपादानकारण' है, जिसमें अखिल ब्रह्माण्ड सूक्ष्म रूप में निहित है।

मूलप्रकृति द्रव्य है। सांख्यशास्त्र में गुणों के समुदाय को द्रव्य कहते हैं— 'गण समुदायों द्रव्यः।' सत्त्व, रजस, तमस् इन त्रिगुणों के समूह का नाम द्रव्य कहा गया है।

जबकि न्याय के अनुसार— गुण जिसमें आश्रित रहे वही द्रव्य है— 'गुणाश्रयों द्रव्यः।' मूलप्रकृति भी तीनों गुणों का समूह है, तीनों गुण समान अनुपात में रहें तो मूलप्रकृति कहलाते हैं। अर्थात् जितनी मात्रा में सत्त्व हो, उतनी ही मात्रा में रजस् और तमोगुण भी हो तभी गुणों की साम्यावस्था होगी— यही समगुणत्रय है। यहाँ सत्त्व, रज तथा तम द्रव्य के रूप में प्रयुक्त हैं एवं संयोग—विभागशील, प्रसवधर्मी। गुणाश्रय एवं क्रियाश्रय होने से वैशेषिकगुण से नितान्त अलग है। गुणों की साम्यावस्था में एकरूप परिणाम होता है अर्थात् सत्त्व सत्त्व में ही परिणत होगा रज व तम भी अपने में ही परिणित होते रहते हैं, क्योंकि प्रकृति परिणामिनित्य हैं। अतः प्रलय काल में भी वह परिणाम को छोड़ नहीं पाती है।

इसी से सिसृक्षा होने पर गुणों में विक्षोभ उत्पन्न हो जाने से यह साम्यावस्था भंग हो जाती है, फलस्वरूप गुणों का विरूप परिणाम होने लगता है, जिससे महदादि 23 विकार उत्पन्न होते हैं, इसे ही 'सृष्टि' कहते हैं।

अतः गुणों का लगातार परिणाम सर्वदा बना रहता है। गुण और प्रकृति में समानता है। गुण प्रकृति स्वरूप है। प्रकृति गुणों के व्याख्यान की समासविधि है। गुणों का विवेचन प्रकृति के विचार की व्यास—विधि से किया गया है। प्रकृति के अर्थ में 'गुण' पद का प्रयोग हर जगह अनुमेय के रूप में है। इन गुणों की संख्या में तीन माना गया है। सांख्य के गुण तथा द्रव्य में अभेद है। जगत् त्रिगुण है— इस कथन से द्रव्य ही विवक्षित है। गुण प्रकृति—स्वरूप होने से द्रव्य—स्वरूप हैं। गुणों को द्रव्य रूप में विज्ञान भिक्षु ने भी माना है, जो सांख्य सम्मत ही प्रतीत होता है।

गुणों को अनेक संख्यक् मानकर इस सिद्धान्त को वैशेषिक—परमाणुवाद के अनुरूप सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। इससे सांख्य में अभ्युपगत गुणों की विभूता को ज्यादा नुकसान पहुँचती है। परमाणु संख्या में अनुक होते हुए भी सीमित है। इनका मिलना भी एक विशेष काल में होता है। 'गुण' असीमित एवं सर्वदा परस्पर सम्पृक्त हैं। अतः गुण एवं परमाणु को एकरूप नहीं माना जा सकता; क्योंकि इसके लिए आगम—प्रमाण भी नहीं प्राप्त होता है।



डॉ.बी.एन. सील ने कहा है कि सृष्टिकाल में प्रकृति पूरी तरह से विक्षुब्ध नहीं होती। इसमें अनेक गुण हैं; उनमें से एक ज्यादा संख्या वाले गुण साम्यावस्था से प्रच्युत होते हैं।¹⁶ इनका यह विचार ज्यादा न्यायवैशेषिक से प्रभावित हुआ है ऐसा कहा जा सकता है। प्रकृति के सम्बन्ध में विचार करते समय देखा गया है कि वह त्रिगुण की साम्यावस्था है। सांख्य में सूक्ष्मभूतों को परमाणु के स्तर का माना जा सकता है। अनेक स्तरों को पार कर गुणों का अनुमान किया जाता है। फिर से त्रिगुण से ही सृष्टि की विविधता की सही व्याख्या की जा सकती है। इन्हें अनेक मानने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है।

गुण तीन हैं उन्हें एक या अनेक मानने का वस्तुतः प्रश्न ही नहीं उठता; ऐसा करने से अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो जायेंगी, यथा दो मानने में सृष्टि सम्भव है। एक के रहने पर अभिभव व मिथुन का प्रश्न ही नहीं उठता? जबकि तीन मानने पर प्रयत्नलाघव एवं सृष्टि के विविध होने का व्याख्यान भी सम्भव है। तीनों गुणों में सृजन आदि की योग्यता नहीं है इसलिये इसमें परस्पररोपकार्यकारकभाव माना गया है। अतः 'गुण' तीन ही है, यह सिद्ध होता है।

वस्तु की सिद्धि 'लक्षण' और प्रमाण से होती है, केवल प्रतिज्ञामात्र करने से नहीं यह नियम है 'लक्षण प्रमाणाभ्याम् हि वस्तु सिद्धिः न तु प्रति ज्ञामात्रेण।' अतः प्रधान की सिद्धि के लिए भी लक्षण और प्रमाण की आवश्यकता अवश्य ही होती है।

प्रधान का लक्षण

सत्त्वरजसस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। (सां.सू. 1/61)।

अर्थात् गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है।' आचार्य विज्ञान भिक्षु ने प्रकृति की परिभाषा दी है—अकार्यावस्था से उपलक्षित गुण साम्य को प्रकृति कहते हैं।¹⁷ उन्हीं का अनुसरण करते हुए 'भावागणेश' ने भी प्रकृति की परिभाषा—'साम्यावस्थौपलक्षिता गुणाः प्रकृतिः' तथा 'अकार्या गुणा' ये दो परिभाषाएँ ही हैं। इन परिभाषाओं में भी ऐसा कहा गया है कि गुणों की साम्यावस्था या अकार्यावस्था को ही प्रकृति माना गया है।

गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है, इस परिभाषा पर यह आपत्ति उठायी जाती है कि यदि गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है, तो सृष्टिकाल में जब गुणों की साम्यावस्था खत्म हो जाती है, तब प्रकृति भी नष्ट हो जानी चाहिए।

इस शंका का समाधान करते हुए विज्ञान भिक्षु का कहना है, कि जगत् के हर एक पदार्थ में तीनों गुणों के अनुस्यूत रहने के कारण प्रकृति के नष्ट होने का प्रसंग ही नहीं उठता।¹⁸ भावागणेश ने प्रकृति का सामान्य लक्षण व्यक्त किया है—तत्त्वान्तरारम्भकत्वं प्रकृतित्वम्' (तत्त्वयाथार्थ्यदीपन-1) अर्थात् जो अन्य तत्त्वों को उत्पन्न करने में समक्षम है वह प्रकृति है, यह बताया है; तो उसे जगत् के उपादान कारण के रूप में प्रस्तुत करता है। 'तत्त्वसमाससूत्र' की 'सर्वोपकारिणी' टीका में भी प्रकृति के इस लक्षण को स्वीकार किया गया है।¹⁹

'भावागणेश' के मत में— 'प्रकर्षण कुर्वन्तीति प्रकृतिः' — अर्थात् प्रकृष्टपूर्वक तत्त्वों का आविर्भाव करती है, इसलिए इसे 'प्रकृति' कहते हैं। 'विषमानन्द' के मत में— यह प्रकृष्टरूपा परिणामिनी है, इसीलिए प्रकृति कहलाने



योग्य है। प्रकृतिपद में विशेष रूप से सृष्टि की मान्यता का अन्तर्निहित है। 'प्रकर्षण धीयन्ते अन्तर्लीयते सर्व जगत् यस्मिन् तत्'—प्रलयकाल में महदादि सम्पूर्ण तत्त्व प्रकृति में विजाति क्रम से लीन हो जाते हैं; इस आधार पर इसे 'प्रधान' कहते हैं।

अभी तक प्रकृति की जितनी प्राप्त परिभाषाएँ हैं या लक्षण दिए गए हैं, वे सभी प्रायः मूलकारणप्रधान में घटित होते हैं तथा केवल साम्यावस्थोपलक्षित मूलप्रकृति में ही घटता है। अतः वाचस्पति मिश्र द्वारा प्रधान का यह लक्षण किया गया है—'तत्त्वान्तरोपादनत्वम्'— यह लक्षण महतत्त्व आदि में भी देखने को मिलता है; क्योंकि वह 'अहंकार' आदि का कारण है। 'उपादानत्वम्' यह लक्षण घट, कटकादि के कारणभूत मृत्तिकाकनक आदि में घटित होता है।

अब यदि सांख्यसूत्र के अनुसार प्रधान का लक्षण— 'साम्यावस्थोपलक्षितगुणत्रयात्मकत्व' यह माना जाय तो 'प्रधान' को 'प्रकृति' कह सकने पर भी 'महदादि' को 'प्रकृति' न कह सकेंगे। अतः प्रकृति—लक्षण की महदादि में 'अव्याप्ति' होगी। यदि केवल 'उपादानत्वम्' लक्षण करेंगे तो महदादि को प्रकृति कह सकने पर भी मृत्—कनक को भी 'प्रकृतिः' कहना पड़ेगा प्रधान के लक्षण की 'अतिव्याप्ति' होगी।

अतः 'प्रधान' की तरह महदादि को भी 'प्रकृति' शब्द से कह सकें और मृत् कनकादि को 'प्रकृति' शब्द से न कह पायें, 'इस रीति से अतिव्याप्ति—अव्याप्ति रूप दोषों के निरसनार्थ 'तत्त्वान्तरोपादानत्वम्' लक्षण ही 'प्रकृति' का हो सकता है। इस लक्षण के स्वीकार करने पर कहीं भी दोष नहीं है। सांख्य सूत्रोक्त लक्षण केवल 'प्रधान' में ही घटित हो पाता है, हर जगह नहीं। अतः यह सर्वानुगत लक्षण नहीं है। इसलिए प्रकृति का लक्षण— 'तत्त्वान्तरोपादनत्वम्' ही युक्ति के अनुसार सिद्ध होता है।²⁰

मृत्कनकादि में जो 'मृत्प्रकृतिकों घटः', 'कनक प्रकृतिकं कटकम्' इस प्रकार 'प्रकृति' शब्द का व्यवहार होता है। वह 'भागत्यागलक्षणा' उपादानत्वमात्र अर्थ को लेकर मृदादि में लाक्षणिक या एकदेशभूत उपादानत्वरूप साधर्म्य को लेकर गौण है।

सांख्यचन्द्रिका—व्याख्याकार ने प्रकृति का सबसे अच्छा लक्षण इस तरह किया है—'अजन्यत्वे सति जनकत्वं प्रकृतित्वम्।' प्रकृति अजन्य है अर्थात् इसकी उत्पत्ति किसी अन्य कारण से नहीं हुयी है; उपनिषदों में भी इसे 'अजा'²¹ कहा गया है। यही समस्त जड़ जगत् के रूप में परिणित होती है। चन्द्रिकाकार का लक्षण सांख्यसूत्र के इस लक्षण के समान अर्थ वाला है कि— मूल में मूल का अभाव होने के कारण 'मूलप्रकृति' वह है जो दूसरों का कारण है (महदादि का); किन्तु उसका कोई कारण नहीं है।²²

प्रकृति तत्त्व को भी किसी अन्य को कारण मानने में 'अनवस्था दोष' उत्पन्न हो जायेगा।²³ किन्तु यह प्रमाणित नहीं है इसलिए प्रकृति तत्त्व को ही जगत् का मूलकारण एवं अनादि मान लिया गया है। 'अजामेकां-0' श्रुति तथा 'प्रकृति पुरुषं चैव विद्वयनादी उभावपि—' स्मृति दोनों से प्रकृति का अजन्यत्व अनादित्व सिद्ध होने के कारण प्रकृतित्व में की कारण परम्परा की विश्रान्ति हो जाती है। अतः अनवस्था मानने में कोई प्रमाण नहीं है। सांख्यकारिका में ईश्वरकृष्ण द्वारा दिया गया यह लक्षण भी समान अर्थ वाला



है—‘मूलप्रकृतिरविकृतिः’²⁴ अर्थात् मूलप्रकृति किसी की विकृति नहीं है। यह मूल भी है और प्रकृति भी है, अतः मूलप्रकृति कहलाती है।

‘असाधारण धर्मो लक्षणम्’ अर्थात् वस्तु के असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं। प्रकृति का असाधारण धर्म है, त्रिगुण की साम्यावस्था, जड़ता, जगत्कर्तृत्व, अनादित्व, परिणामित्व आदि। प्रकृति जगत् का उपादान कारण है तथा सत्त्व, रजस् व तमस् की साम्यावस्था है। सृष्टिकाल में यह साम्यावस्था नहीं रहती। अतः ‘गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः’ यह लक्षण ‘अव्याप्त’ है। परन्तु उपादानत्व अर्थात् यह समस्त जड़—जगत् प्रकृति का ही परिणाम होने से, प्रकृति के गुणों से भरपूर है क्योंकि ‘यादृशं कारणम् तादृशं कार्यम्’ यह सांख्यमत है। तथा प्रकृति जड़—जगत् का उपादानकारण है यह कहने से प्रकृति का उपादानत्व रूप ‘असाधारणधर्म’ प्रतिपादित हो रहा है, जो प्रकृति व उसके विकारों में भी घटित होना प्रतीत हो रहा है।

अतः सांख्यतत्त्वकौमुदीकारकृत ‘तत्त्वान्तरोपादानत्वम्’ यह लक्षण अव्याप्ति एवं अतिव्याप्ति आदि दोषों से रहित होने से ‘निर्दुष्ट’ है। प्रधान का तटस्थ—लक्षण एवं स्वरूप—लक्षण भी दिया गया है, जो इस प्रकार है।

संदर्भ स्रोतः

- [1]. पुल्लिंग में प्रयुक्त, नपुंसक लिंग में प्रयुक्त, समस्तपद में प्रयुक्त। डॉ. भारतीय दर्शन।
- [2]. (गी. 3/28)
- [3]. (गी. 3/33)
- [4]. ‘प्रकृति इति उच्यते विकारोत्पादकत्वात्, अविद्या ज्ञानविरोधित्वात्, माया विचित्रसृष्टिकारत्वात्।’
- [5]. प्रकृष्ट ववाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टि वाचकः।
- [6]. सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता।। —देवीभगवत्।
- [7]. विज्ञानभिक्षुः सांख्यप्रवचनभाष्य।
- [8]. कर्मणोपि न वस्तुसिद्धं निर्मितकारणस्य कर्मणो न मूलकारणत्वम्। —विज्ञानभिक्षु —सां. प्र. भात्र (1/81)।
- [9]. अत्र कर्मशब्दोऽविद्यादीनामप्युपलक्षकौ गुणत्वाविशेषेण तेषामप्युपादानत्वायोगात्। —सां.प्र.भ., 1/81।
- [10]. कार्यदर्शनात्तदुपलब्धेः। — सो.सू., 1/110।
- [11]. कार्यात् कारणानुमानं तत्साहित्यात्। —सां.सू., 1/135।
- [12]. बृजमोहन चतुर्वेदी, —सां.का. 11, पृ. 132।
- [13]. सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात्। — सां.सू. 6/38।
- [14]. सुखधर्मकं सत्त्वम्, दुःखधर्मकं रजः, मोहधर्मकं तमः। —सां.सू.।
- [15]. इच्छाद्वेषप्रयत्नसुख दुःखज्ञानान्यात्मनोलिंगमिति। —न्यायसूत्र, 1/1/110।
- [16]. मूलप्रकृतिरविकृति— 0।3।। —सां.का.।



- [17]. Pasitive Science of ancient Hindus. -p.p. 7-8. Dr. B.N.Seal.
- [18]. अकार्यावस्थोपलक्षितं गुणसाम्यं प्रकृतिः ।
- [19]. सा च साम्यावस्थयौपलितं सत्त्वादित्रयम् । – सां.प्र.भा. 1/61 ।
- [20]. कार्यावस्था में गुणसाम्य नहीं रहता, अकार्यावस्था ही गुणसाम्य की अवस्था है ।
- [21]. महदादिकतन्तु कार्यैसत्त्वादिकं न कदाप्यकार्यावस्थ भवतीति तद्व्यावृत्तिः । वैषम्यावस्थायामति प्रकृतितत्त्वसिद्धये उपलक्षितम् । –सां.सा.पूर्वभावा तृ.परि., पृ. 304 ।
- [22]. सर्वोपकारिणी, 1–3 ।
- [23]. सांख्यकारिका : तत्त्वकौमुदी : व्याख्याकार गजाननशास्त्री मुलगांवकर ।
- [24]. अजामेकां लोहितकृष्ण शुक्लां-0 । –श्वेताश्वतरोपनिषद् ।
- [25]. मूलेमूलाभावादभूलम् । –सां. 1/67 ।
- [26]. मूलक्षतिकरीमारनवस्थां हि दूषणम् – उदयनाचार्य ।
- [27]. मूलप्रकृति ——— पुरुषः ।।3।। – सां.का. ईश्वरकृष्ण ।